ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 171-174
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

कलि–कथा वाया बाइपास : भाषा और शिल्प

डॉ0 कृष्णकान्त चन्द्रा
एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल पी0जी0 कॉलेज
बाराबंकी, (उ0प्र0) भारत

Received- 11.11.2018, Revised- 18.11.2018, Accepted - 24.11.2018 E-mail: dr.kkchandra@gmail.com

सारांश : ***बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में उपन्यास सृजन की मन्द पड़ती धारा में एक उफान सा आया। पुराने और स्थापित लोगों के साथ–साथ नये लेखक–लेखिकाओं ने अनेक उपन्यास दिये। नये लेखक–लेखिकाओं का साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण कोई नई बात नहीं है लेकिन यदि वह पदार्पण 'रेणु' व उनके 'मैला आँचल' की तरह हो तो वह निश्चित रूप उल्लेखनीय हो जाता है। अलका सरावगी अपने पहले उपन्यास 'कलि–कथाः वाया बाइपास' के साथ हवा के नए झोंके की भाँति इस सदी के अन्तिम वर्षों में उपन्यास सृजन के क्षितिज में उदित हुई। सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ0 नामवर सिंह भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि रेणु के 'मैला–आँचल' की भाँति ही अलका के कलि–कथाः वाया बाइपास में एक ताजगी है। निःसन्देह यह ताजगी उनके समकालीन उपन्यास लेखकों में नहीं मिलती। यह ताजगी शिल्प के स्तर पर और भी ज्यादा मुखरित हुई है। प्रायः सभी आलोचकों ने 'कलिकथा' के शिल्प की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। अतएव यह आवश्यक बन पड़ता है कि विवेच्य उपन्यास के औपन्यासिक शिल्प की ताजगी की पड़ताल की जाए।***

कुंजीभूत शब्द– अन्तिम दशक, उपन्यास सृजन, उफान, पदार्पण, बाइपास, क्षितिज, औपन्यासिक शिल्प ।

'कलि–कथाः वाया बाइपास' (आधार, 1998) अपनी तरह का एक नया और अनूठा काम है, कम से कम हिन्दी कथाकथन या औपन्यासिकता के इरादे में। अपने बयान में जहाँ वह खासा दिलचस्प और पेचीदा है, यह तय है कि अंदाजे–बयां में अपनी उस्तादाना पकड़ और निबाह के चलते यह रचना हिंदी भाषा–साहित्य के ठहरे पानियों में एक हलचल, एक जोश, एक जोर के साथ दाखिल होगी, बल्कि हुई है।"[1]

अतएव इस उपन्यास में ऐसा नया और अनूठा क्या है जो कथा–साहित्य सृजन के ठहरे पानी में हलचल पैदा करता है? अगर इस 'नया' और 'अनूठा' की खोज की जाये तो पता चलेगा कि यह एक ही स्तर पर नहीं अपितु कई स्तरों पर दिखाई देता है।

यह नयापन सबसे पहले उपन्यास लेखन में लेखिका ने स्वयं को एक अभिकर्ता या एजेंट की भूमिका में रखा है। यहाँ 'कलिकथा' का बयान लेखिका स्वयं नहीं कर रही है अपितु उसके द्वारा यह कार्य 'कोई और' करवा रहा है – वह तो केवल निमित्त मात्र है। किसी वेदव्यास के लिए वह गणेश बन गई हैं। लेखिका फरमाती हैं –

"यह कथा किशोर बाबू की कथा है और कथा–लेखक की उपस्थिति इसमें इतनी ही होगी जितनी कि खांटी शुद्ध किस्सागोई में होनी चाहिए। दरअसल कुछ एकदम नयी आधुनिकतम रचनाओं को पढ़ने के बाद इस कथा को लिखवाने के पहले किशोर बाबू ने कथा–लेखक से ऐसा कौल करवाया कि वह बंगाल के ख्याति प्राप्त सुनारों की तरह बाईस बाई बाईस (22X22) कैरेट षुद्धि के गहनों जैसी कथा लिखें – यानी विशुद्ध सोने के चौबीस कैरेट में दो कैरेट की मिलावट करने जितनी ही कथा–लेखक को छूट है। यह इसलिए कि किशोर बाबू जानते हैं कि इसके बिना सोने के गहने गढ़े ही नहीं जा सकते।"[2]

स्पष्ट है यह 'कोई और' या 'व्यास' किशोर बाबू है, जिनकी कथा ही इस उपन्यास की कथा है और इसकी कथा कथाकार ने गढ़ी नहीं है, उससे सत्तर पार कर चुके किशोर बाबू नामक एक मध्यवर्गीय व्यक्ति ने लिखवाई है। उपन्यास सृजन का यह ढंग निश्चित तौर पर पारम्परिक रूढ़ियों से अलग हुआ है और इसमें नयेपन के साथ ताजगी भी है। यहाँ एक जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से उठ सकती है कि क्या इसके पहले ऐसे प्रयोग किसी ने नहीं किये। इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का स्मरण हो आता है जहाँ मैडम कैथरीन उन्हें कथा–लेखन की प्रेरणा और सामग्री देती है पर इसमें संदेह नहीं कि 'आत्मकथा' से 'कलि–कथा' की लेखकीय प्रस्तुति में भिन्नता अवश्य है। कथा–प्रवाह और कथा–ढाँचे के साथ औपन्यासिक विकास की प्रक्रिया में अन्तर है।

लेखिका द्वारा उपरोक्त कथा–युक्ति को अपनाने का एक उद्देश्य है। इससे उन्हें कई सहूलियतें एक साथ

प्राप्त हो जाती है। एक तो यह कि किशोर बाबू के ब्याज से कथा में विश्वसनीयता और यथार्थ का भ्रम पैदा किया जा सकता है। दूसरे कथा के भीतर कथा की अंतर्कथा या कथा की रचना–प्रक्रिया के बारे में कुछ कहने की सुविधा भी हो गई है। सब कुछ कहानी का अंग बनकर उपस्थित हो गया है और कथाकृति किसी 'भूमिका', 'प्राक्कथन' या 'दो शब्द' – जैसी प्रारम्भ की औपचारिकता से मुक्त हो गई है। तीसरे कथाकृति में इस युक्ति से कथाकार को अपने पाठकों से अनौपचारिक ढंग से बोलने–बतियाने का अवसर मिल गया है। इस प्रकार वह डबल–वे–ट्रेफिक हो गया है जिसमें कथाकार और पाठक की साझेदारी के साथ कथा की आपसी समझदारी भी बढ़ती जाती है। चौथे यह कि इससे कथा में कभी–कभी से तात्कालिक रूप से असंबद्ध, पर जरूरी कथेतर सामग्री के उपयोग की सुविधा भी संभव हुई है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि बहुत सोच समझकर योजनाबद्ध तरीके से इस कथा युक्ति को अपनाया गया है। वैसे इस उपन्यास के फार्म और इसमें दिए गए प्रयोगों के संबंध में पूछे जाने पर उन्होंने अपने एक साक्षात्कार में कहा है– "मुझे शिल्प का अर्थ ही पता नहीं है, कथा सिर्फ कथा है, जिसको आप प्रयोग कहते हैं, मैं तो यह सोचती हूँ कि कथा अबूझ न रह जायें। कथा के लिए फार्म जो है, वह स्वयं भू है। ..... मेरे लिए तो प्राथमिकता ही बहुत सरल स्तर पर किसी को कम्युनिकेट करना है।"[3]

जो भी हो, इतना तो अवश्य है कि 'कलि–कथा' की कथा–युक्ति में ताजगी और नयापन है। यह ताजगी उपन्यास के ढाँचे में भी है। पूरा उपन्यास सोलह (16) अध्यायों में विभक्त है। उपन्यास कर अध्यायों में विभक्त होना कोई नई बात नहीं है पर लेखिका ने इन अध्यायों को माकूल शीर्षकों से सजा कर इसमें ताजगी ला दी है। इन अध्यायों के शीर्षक दृष्टव्य हैं – (1) कलि–कथा:1999 (2) समवेयर इन द नार्थ, (3) बीचवाला कमरा कहाँ है? (4) कलि–कथा:1940 (5) जदि निर्वासनें पाठाबेई–कलिकाता, (6) जिंदगियां बेमतलब, (7) पुनः कलि–कथा:1940, नवम्बर, प्रसन्न कुमार टैगोर स्ट्रीट, (9) कौलः 1 जनवरी 2000 ईस्वी, (10) 2 जुलाई, 1940, (11) हिटलर और नेहरू, (12) नाइन्टीन फोर्टी टू : अ लव स्टोरी? (13) अकाल कभी नहीं होता नहीं ..... (14) द ग्रेट कैलकटा किलिंग (15) आजादी की छांव में : उत्तर काण्ड, (16) पुनश्च। बीच में 15वें अध्याय में एक उपशीर्षक भी है – 'किशोर बाबू का आत्मालाप दुखी जीवन की कथा रही.....।

उपरोक्त शीर्षकों को हिंदी, बांग्ला और अंग्रेजी की शब्दावलियों से सजाया गया है। ये शीर्षक विषय के अनुकूल और आकर्षक है और औपन्यासिक शिल्प में एक नया प्रयोग भी। लेखिका का यह प्रयोग सफल हुआ है।

इसी प्रकार बीच–बीच में लेखिका का स्वयं आकर पाठकों से संवाद स्थापित करना भी नया और अनोखा है। मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'कुरू कुरू स्वाहा' और 'कसय' में भी लेखकीय हस्तक्षेप और पाठकों से सीधे संवाद की योजना है पर बाइयास में मोटे और तीरछे अक्षरों में अलग से उपन्यासकार की बातें रखी गई है। कहीं–कहीं घोषित रूप से बता दिया गया है। यथा– अध्याय 5 में – 'कथा–लेखक का अनिवार्य हस्तक्षेप। कुल मिलाकर प्रयोग की एक नई चाशनी में शिल्प को डुबोया गया है।

इस तरह कथा–कहने के लिए प्रयोगों के प्रपंच किए गए हैं जो कुछ अलग हट कर प्रतीत होते हैं। इतना ही नहीं–कथानक के विकास के लिए भी अच्छी युक्ति निकाली गई है। यहाँ किशोर बाबू अपनी कथा सुना रहे हैं। किस्सागोई की खासियत है कि वह सीधे–सीधे बल्कि वक्र रेखा में आगे बढ़ती हैं कोई व्यक्ति कहानी कहते–कहते कभी आज की बात कहने लगेगा, तो कभी किसी प्रसंग पर जरूरत से ज्यादा अटक जाएगा। बात से बात निकल आने में काल की बाध्यता कहीं आड़े नहीं आती। फलतः कथा कभी अचानक बहुत पीछे, तो कभी अचानक बहुत आगे चली जाती है। जैसे अध्याय 5 में – "अब यह कथा किशोर बाबू की जिद पर और पीछे चली जाती है : किशोर बाबू अपने ग्रेट ग्रैंड फादर रामविलास बाबू उर्फ बड़े बाबू (1880–1926) की डायरी के आधार पर एक विगत–कथा लिखवाने लगते हैं। .....'टू–द–पाईंट' बातें करने के प्रबल पक्षधर किशोर–बाबू के लिए अब अवांतर ही प्रधान हो गया है।"[4]

इसी तरह 'पुनश्च' में कथा भविष्य में चली जाती है। इसमें एक जनवरी, दो हजार ईस्वी की घटना का वर्णन किया जाता है जबकि उपन्यास का प्रकाशन सन् 1998 में ही हो गया था। कथा के इस 'टू एण्ड फ्रो' मोशन के लिए लेखिका ने कई टेकनीक का इस्तेमाल किया है – जैसे – लैश बैक, क्लोजअप, डिजाल्व जैसी तकनीक के साथ फंतासी की तकनीक।

'लैश बैक' में कथा–वाचक स्मृतियों के अतीत में चला जाता है और पुरानी चीजें व घटनाएँ उसके सामने उद्भाषित होने लगती हैं। इस तकनीक का प्रयोग पूरे उपन्यास में भरा पड़ा है। इसी तरह 'क्लोज–अप' में चीजों को या दिल की भावनाओं को करीब से टटोलने का प्रयास किया जाता है। किशोर बाबू के आत्ममंथन की तरह 'डिजाल्व' में जहाँ स्मृतियाँ, घटनाएँ घुल–मिल कर फेड होती जाती हैं। इसी तरह फंतासी या स्वप्न–कथा का पूरा इस्तेमाल किया गया है। इसी फंतासी के सहारे किशोर बाबू 2000 ई0 में समय से पहले पहुँच जाते हैं और जीवन की अनेकानेक घटनाओं का पुनर्विवेचन भी करते हैं। 'पुनश्च' में किशोर बाबू की लंबी

नींद का जिक्र आया है। कथा–लेखक की टिप्पणी गौर–तलब है। "कथा गढ़ने के तरीके अनंत हैं: यह भ्रम या विश्वास हर कथा कहने वाले को युगों–युगों से भटकता आया है। इस कथा के वाचक और नामक किशोर बाबू ने कथा–लेखक को कोई कम नहीं भटकाया।"

इधर से उधर भटकती है। कहानी के भीतर से कहानी निकलती है। जैसे खत्री जी के 'चंद्रकांता' के तिलस्म के भीतर से तिलस्म पर इतनी भटकन और विश्रृंखलताओं के बावजूद कथा में बिखराव नहीं है। कहानी नियंत्रण के बाहर नहीं जा पाई है। जब भी ऐसी स्थिति आई है, उसे कुषलतापूर्वक संभाल लिया गया है। प्रायः लेखिका के हस्तक्षेप द्वारा। जिस तरह 'कलि–कथा' में किशोर बाबू की कई पीढ़ियों की गाथा पिरोई गई है, वैसे ही 'भगवतीचरण वर्मा' के 'भूले बिसरे चित्र' में भी कई पीढ़ियों की कथा है। यहाँ कहानी के केन्द्र में किशोर बाबू हैं, वहाँ ज्वालाप्रसाद। दोनों ही कथा–वाचक की भूमिका में हैं। दोनों ही जगहों पर फंतासी हैं लैशबैक है। अंतर यही है कि 'भूले बिसरे चित्र' में कथा–प्रवाह में वैसी भटकन, बिखराव नहीं है जैसी कि 'कलि–कथा' में। 'कलिकथा' में काल का प्रवाह पेन्डुलम की तरह आगे या पीछे चला जाता है पर 'चित्र' में काल की निरन्तरता है। काल के अनैरन्तर्य के बावजूद कथा को साथ लेने की विलक्षयता 'कलिकथा' में है।

कहने का तात्पर्य यह है कि 'कलिकथा' की किस्सागोई में भटकाव, उलझनें और अवतरणाएं हैं पर ये सभी उसकी कहानी का हिस्सा बन गई हैं क्योंकि लेखिका ने उसे अपनी लेखकीय कुशलता से समायोजित कर लिया है। किशोर बाबू की कथा–माला की लड़ियों की धारा में अनेक संभव आयामों और आनुषांरीकताओं को साथ लेकर अनेक औपन्यासिक रीति–नीतियों प्रयोगशीलताओं और हथकंडों का अधिग्रहण करते हुए जिनमें से अनेक 'औपन्यासिक' के तौर पर स्वीकृत या स्थापित नहीं हैं – कथा विकसित की गई है। वैसे कभी–कभी स्वप्न–चित्रों, चिदी बाजियों फंतासियों, जादुई यथार्थवाद के चक्करों, भटकायों कारण कथा की सांस भी टूटने लगती है। किशोर बाबू की ही जीवन–यात्रा को उसकी निरंतरता में ससंदर्भ जरूरी रचनात्मक दूरी और कलात्मक निमर्मता के साथ नहीं पकड़ा गया है। कथा लेखिका कथा के बीच–बीच में अपने 'आत्म–चिंतन' की चिप्पियां चस्पां करते हुए कथा को खींचती है। खैर, जो भी हो, अपनी समग्रता में कथा–शिल्प संतुलित है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जैसे कबीर ने 'वाणी' के साथ अपनी डिक्टेटरशिप चलाई, वैसे ही अलका सरावगी ने भी शिल्प–क्षेत्र में डिक्टेटरशिप की मनमानी की। अपने उपन्यास की कथा को प्रस्तुत करने के लिए उन्हें जो कुछ भी रास आया, उसे स्वीकृत और व्यवहृत किया। फलतः इसमें अनेक, शैलियां और भंगिमाएँ हैं – भाषा और शिल्प के अनूठे प्रयोग हैं। इसमें – 'डायरी के पन्ने हैं, अखबार की कतरनें, चिट्ठी–पत्री, गीतों के बोल, लोक–मुहावरें, अने जगहों पर ऐन 'म्याणी आली जबान' के टोटे और सीधा लेखकीय हस्तक्षेप, न केवल घोषणा और वक्तव्य के लिए, बल्कि एकाध जगह बेलगाम होते दीखती स्वैर–कल्पना और स्वप्न–चित्र तक, उपन्यास को एक अथाह ताजगी और दुर्निवार–से आकर्षण से भर देते हुए।'[5]

कहना ना होगा कि शिल्प के ये मिश्रित प्रयोग बंगाल में पूजा प्रसाद के रूप में मिश्रित सामग्रियों से बनाये जाने वाले 'भोग' (एक प्रकार की खिचड़ी) की तरह स्वादिष्ट, रूचिकर और सुगंधित बन पड़े हैं।

शिल्प की तरह भाषा में भी अलका सरावगी ने अपने प्रयोगों के द्वारा एक ताजगी ला दी। पहली बात तो यह है कि उन्होंने बिल्कुल इधर हाल के वर्षों के प्रचलित और लोकप्रिय शब्दावलियों और जुमलों का प्रयोग धड़ल्ले के साथ किया जैसे – 'नाइन्टीन फोर्टी टू : अ लव स्टोरी'। जाहिर है एक लोकप्रिय बम्बइयॉ फिल्म का नाम है लेकिन उपन्यासकार ने इसका प्रयोग उन्नीस सौ बयालीस के भारत की राजनीतिक सामाजिक स्थिति के वर्णन के परिप्रेक्ष्य में शीर्षक के रूप में किया है। इसी तरह बांग्ला के शब्दों और विभिन्न लोकगीतों आदि का प्रसगांन – कुल उपन्यास की भाशा में आकर्षण पैदा करता है। जैसे –

"जदि निर्वासने पाठाबेई – कलिकाता"

यहाँ एक बांग्ला लोकगीत भी दृष्टव्य है –

"आड़ाली धानेर चिउड़ा बिन्नी धानेर खोई
फोड़ित पाटाली गुड़ सिलिमपुरा दोई
ओ बोन्धु जाइयों आमार बाड़ी तोमार लाइका भाइजा तोइरी आउस धानेर मूड़ी।"[6]

इसी तरह बांग्ला भाषा के अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं जैसे – बाँडी, टागाड़ी, टोल, याज्ञानिक, सांघातिक, कादा आदि आदि।

इसी तरह अंग्रेजी वाक्यांशों का भी प्रयोग किया गया है। यथा 'समवेयर इन द नार्थ', 'द ग्रेट कलकटा किलिंग', आदि। यहाँ तक कि उपन्यास का आधा नाम भी अंग्रेजी में है जैसे – 'वाया बाइपास'। इतना ही नहीं। इसमें मारवाड़ी भाषा के प्रयोग से भी कोई परहेज नहीं किया गया है।

वहाँ के लोकगीतों का भी कुछ उदाहरण देखें –

जैसे – (1) डेडरियों करें डंरू–डरू पालर पानी भरूं भरूं आधी रात री तलाई नेष्टेई नेष्टे।'[7]

(2) मरूधर म्हारों देस, म्हाने प्यारा लागे जी
धोला–धोला टीवड़ा जी, उजली निरमल रेत चमचम चमके

चाँदनी में, ज्यूं चांदी रा खेत म्हाने प्यारा लागे जी .... ।[8]

यहाँ एक मारवाड़ी गीत भी दृष्टव्य है –

(3) मेंहदी मोल की ऐ।
ऐ जी मेंहदी सची म्हारे हाथ,
म्हारों बन्नों बस्यों है दूर, सहेली
कुण निरखे म्हारा हाथ?

भाषा की तरह उपन्यास के संवाद या कथोपकथन में भी कसावट दिखायी देती है। छोटे–छोटे संवादों के साथ बड़े संवादों को भी आवश्यकता और अवसर के अनुसार प्रयोग किये गये हैं।

बोलचाल में स्थानीय शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। जैसे किशोर ने सुझाव रखा – ''चलो एक दिन हम चलकर किसी 'कसबिन' को देख आएं।''

बोलचाल में अक्सर अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। जैसे – ''क्या बात है, तुम्हारी स्टडी में कहीं नेताजी की तस्वीर नज़र नहीं आ रही।''

इस तरह औपन्यासिक शिल्प भाषा और संवाद की दृष्टि से कलि–कथा! वाया बाइपास'' एक ऐसी प्रौढ़ कृति है कि इसे देखकर सहज में विश्वास नहीं होता कि यह किसी रचनाकार की प्रथम कृति है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पल प्रतिपल – मार्च–जून 1999, पृ0सं0 107
2. कलकथा : वाया – बाइपास, पृ0सं0 10
3. हंस – जनवरी 1999, पृ0 सं0 128
4. उपन्यास, पृ0 सं0 27
5. कलिकथा : वाया – बाईपास, पृ0 सं0 127
6. कलिकथा : वाया – बाईपास, पृ0 सं0 28
7. कलिकथा : वाया – बाईपास, पृ0 सं0 34

*****